“बघेलखंड का ऐतिहासिक अध्ययन

(लोक कला के विशेष संदर्भ में)

सुनील कुमार मिश्र

प्रवक्ता - इतिहास

फुंदी सिंह लौना राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जालौन ,

जनपद- चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

सारांश - बघेलखंड एक प्राचीन सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र है, जो की भारत के मध्य प्रदेश राज्य के एक भाग के रूप में जाना जाता है। सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और पुनर्स्थापना इसमें शामिल कलाकृतियां, वास्तुकला, पुरातत्व और संग्रहालय संग्रह की सुरक्षा और देखभाल पर केंद्रित है, बघेलखंड के संबंध में सामाजिक ,आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, कला एवं साहित्य के बारे में जानकारी इस क्षेत्र में पाए गए मंदिरों, मूर्तियों, शिलालेखों ,सामाजिक रीति- रिवाजों परंपराओं और उपलब्ध प्राचीन साहित्य होती है ।इस क्षेत्र के समाजिक जीवन से संबंधित विभिन्न पक्षों का अध्ययन विभिन्न स्रोतों एवं तथ्यों के आधार पर किया गया है ।बघेल राजवंश ने इस भूखंड में सर्वाधिक भूमिका निभाई । जनमानस में यह राजवंश इस प्रकार लोकप्रिय हुआ कि भूखंड को ही बघेलखण्ड कहा जाने लगा। बघेल राजवंश का उत्कर्ष के विभिन्न मत, प्रमुख बघेल शासक, उनका कालक्रम, प्रमुख घटनाओं तथा उनकी प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने बघेलखंड के ऐतिहासिक कालखण्ड को महत्वपूर्ण बना दिया। बघेल राजवंश में बघेलखंड राज्य के संस्थापक व्याघ्रराज से लेकर महाराज मार्तंड सिंह तक 35 से अधिक शासक हुए जिनका कालक्रम 14वीं सदी से लेकर स्वतंत्रता तक था।

मुख्य शब्द -बघेलखंड, सांस्कृतिक विरासत, वास्तुकला,आदिवासी लोक जीवन, लोक नृत्य ,लोक कला।

प्रस्तावना-

मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है। वह उसी की गोद में पलता है , उसी से संघर्ष करके अथवा उसका सहयोग प्राप्त करके वह अपने जीवन निर्वाह की सामग्री जुटाता है और अपने जीवन को दिन-प्रतिदिन अधिक समृद्ध और सुखी बनाने का प्रयत्न करता है। इसलिए उसके जीवन का विकास बहुत कुछ वहां की प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

रीवा ,सतना ,सीधी, शहडोल, उमरिया, अनूपपुर, मैहर, मऊगंज और सिंगरौली को सामूहिक रूप से बघेलखंड क्षेत्र कहा जाता है। बघेलखंड मध्य भारत का एक ऐसा क्षेत्र है जो आदिकाल से सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कर्ष का प्रमुख केंद्र बिंदु रहा है। नामकरण की दृष्टि यदि इसका आरंभिक इतिहास देखा जाए तो एक लंबी श्रृंखला दृष्टिगोचर होती है।

बघेलखण्ड नाम के प्रचलन से पूर्व यह भू- भाग करुष बागुड, अष्टादशाटवी राज्य, मध्य देश व डाभाल(डाहल) आदि नाम से जाना जाता रहा है ।कलचुरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि वर्तमान रेवांचल का नाम रेवा पत्तला था।

13वीं शताब्दी में इस अंचल में बघेलों का पदार्पण हुआ ।गुजरात से आकर मरफा (कालिंजर) नामक स्थान में बसे। 16वीं शताब्दी और उसके पश्चात उन्होंने क्रमशः गहोरा जिला (बांदा) उत्तर प्रदेश, बांधवगढ़ (म. प्र.) और रीवां मध्य प्रदेश को अपनी राजधानियां बनाया।

संभवतः अनेक वर्षों से यहां बघेलवंशीय शासको का शासन रहा इसलिए इस भू भाग का नाम बघेलखंड प्रचलित हुआ।

पंद्रहवीं -सोलहवीं शताब्दी में बघेलखंड को क्रमशः भटगोंड, गहोरा , बांधवगढ़ इतिहास नामों से भी पुकारा गया ।1617 ईस्वी में महाराजा विक्रमादित्य ने बांधव के स्थान के पर रीवां को राजधानी बनाया। संभवतः इसी समय से इसका नाम रीवा प्रचलित हुआ । इस नामकरण के पीछे पौराणिक कथा यह है कि इस राज्य की अत्यधिक माहात्म्य से परिपूरित नदी नर्मदा जो की अमरकंटक पर्वतमाला से निकली है , उसका पौराणिक नाम' रेवा 'है इसी नाम के आधार पर इस राज्य का नाम रेवा पड़ा ।

वहीं अपभंश होकर बाद में रीवा कहा जाने लगा। अभिलेखिक साक्ष्यों के अनुसार इस क्षेत्र को कलचुरि शासकों के काल में रेवापत्तला कहा जाता था उसका अवशिष्ट रूप रेवा से रीवा बना ।इस नाम के संदर्भ में कर्नल जनार्दन सिंह ने भी लिखा है , कि मालूम होता है कि रीवा 'रेवा' शब्द का जो परम पवित्र दक्षिण गामिनी नदी का पर्यायवाचक है, अपभ्रंश है।

लोक साहित्य एवं संस्कृति- लोक साहित्य लोक जीवन का प्रतिबिंब होता है, जो गीत ,कहानियों और पहेलियों के रूप में प्रत्येक समाज में विद्यमान रहता है। बघेली भाषा में जन्म, मुंडन जनेऊ व विवाह के समय यहां जो गीत गाए जाते हैं, वे वास्तव में शताब्दियों से पीढ़ी दर पीढ़ी को हस्तांतरित होने वाला लोक साहित्य है। इसी तरह देवी पूजा के गीत, कजली, झूला और खजुलिया के गीत, तुलसी के विवाह गीत, फाग और होली , सोहाग, कलेवा, विदाई , सोहर बधाव आदि त्योहारों के गीत प्रचुर मात्रा में यहां प्रचलित है। राम सीता के जीवन की कथाएं, आल्हा ऊदल की कहानी तथा बघेल राजपूत के युद्ध या वीरता की कहानियां भी प्रचलित है। इस क्षेत्र में बघेली पहेलियां भी प्रचलित है जो अत्यंत साधारण शब्दों में गूढ़ अर्थ प्रस्तुत करती हैं। बघेली भाषा प्रयागराज तथा मिर्जापुर के दक्षिणी भागों में प्रचलित है जिसका केंद्र रीवा है। बघेली भाषा का साहित्य पद्य एवं गद्य दोनों ही रूप में पाया जाता है ।इसका लोक साहित्य संपन्न है बघेली रामायण, परशुराम वार्ता, बघेली किशन कथा, बघेली भजन, बघेली गारी, बैजू की सूक्तियां आदि प्रसिद्ध बघेली रचनाएं हैं ।इस क्षेत्र में बैजू, सैफू ,शंभू काकू आदि बघेली कवि के रूप में प्रसिद्ध है।

जनजातीय लोक परंपरा-जनजाति शब्द अपने में असीम अनुपम और अद्‌भुत इतिहास संजोए हुये है, इसका उच्चारण करते ही पुरातन जातियों की झलक सामने आ जाती है। आधुनिक युग की चकाचौंध से दूर, आधुनिकता की कृत्रिम और जटिल व्यवहार शैली से असंयुक्त और आज के भौतिक वैभव एवं भोगवादी जीवन से अपरिचित, एकांत और शांत प्रकृति की गोद में रहने वाली जनजातियों के लोग आज भी अपनी परंपराओं से युक्त अपनी मर्यादा और संस्कारों से पुष्ट सामाजिकता का परिचय देते हैं । उनकी अपनी विशेषताएं हैं , उनके अपने संस्कार हैं तथा इनकी अपनी जीवन शैली है ।गोंड ,बैगा, कोल, पनिका और अगरिया रेवांचल में वास करने वाली प्रमुख जनजातियां हैं। इन जनजातियों की धार्मिक परंपराएं, सामाजिक रीति- रिवाज , शताब्दियों से चली आ रही हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। जो अब शहरीकरण की आड़ में विकृति सी होती जा रही है। इस जनजातीय समाज में नृत्य, संगीत गायन और वादन का विशेष महत्व है। इससे इनका मनोरंजन तो होता ही है साथ ही वह अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए ऐसे आयोजन करते हैं ।इनके वाद्य यंत्र अनूठे होते हैं। नगाड़े , ढोल उनके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। बांसुरी, पायल और घुंघरू का भी कहीं कहीं प्रचलन है । बैगा, गोंड और कोल जनजाति में प्रचलित शैला, कर्मा, बिरहा अहीर नृत्य तथा कोलदहा प्रसिद्ध लोक नृत्य हैं ।यह नृत्य रात में होते हैं, यह लोग स्वयं की बनाई हुई कच्चे महुआ की शराब पीकर तथा आग जलाकर बाडों में रात नृत्य करते हैं । बैगा जनजाति में प्रचलित पगधौनी

एक विशेष प्रकार की नृत्य शैली है ।यहां के गोंडों की दिनचर्या जंगल से लकड़ी बांस काटना, मछली पकड़ना, शिकार करना, चिरौंजी ,महुआ ,हर्रा , करौंदा, गूलर ,जामुन आदि फलों को एवं तेंदू पत्तों को इकट्ठा करना है। ये लोग बांस की टोकरी और डलिया आदि भी बनाते हैं ।

इनकी बस्ती में मकानों की संख्या कम होती है वनोपज पर निर्भर रहने के साथ यह लोग कृषि कार्य भी करते हैं। आखेट के समय गोंड स्त्रियां भी बाहर जाती है । शिकार के समय यह लोग शहद, तथा गोंद का भी संग्रह करते हैं ।इनमें कुछ लोग पशुपालन भी करते हैं ।महुआ, खजूर ,इमली एवं ताड के फलों का प्रयोग खाने के साथ-साथ शराब आदि के लिए भी किया जाता है। उनके यहां देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु बलि की भी प्रथा है । गोंड जनजाति के लोगों के बडा देव तथा घमासान उनके प्रमुख लोक देवता हैं। आभूषण के नाम पर मूंगा तथा नकली मोतियों के आभूषण का प्रचलन है। गोंड जनजाति में बहु- विवाह तथा विधवा की प्रथा है। इनके मकान घास फूल फूल के होते हैं, और दीवाल को मिट्टी से लीपा जाता है ।भूत- प्रेत में इनका विश्वास है ।शीतला ,अंबिका, वैराई, लोहपुर माता, बड़ा देव ,ठाकुर देव पनिहारी आदि इनके देवी -देवता है। अगरिया जनजाति के लोग आग में लोटा गलाने का काम करते हैं । रीवा जिले के करियाझार नामक स्थान में लगभग पूरी आबादी जनजातियों की है ।यह स्थान एक द्वीप के समान है।

बघेली लोकगीत बघेलखंड की प्राचीन कला और संस्कृति की झलक हमें यहां के लोकगीतों में परिलक्षित होती है। इस क्षेत्र में लगभग 88 प्रकार के लोकगीत विभिन्न संस्कारों के समय गाए जाते हैं इन लोकगीतों में अनेक रागों के स्वरों का समावेश पाया जाता है ।राग जौनपुरी, पीलू, जै-जै वंती, भोपाली, यमन ,भैरवी काफी ,राजेश्री, बिलावल देश, आशावरी, खमाज, भीमपलासी, तिलक कामोद एवं कोमल ऋषभ आशावरी जैसे राग प्रमुख हैं।

जनजातीय लोकनृत्य- लोक नृत्य प्रकृति का वरदान है, जिस भू भाग की जैसी प्राकृतिक छटा होती है , वहां लोक नृत्य भी उसी के अनुरूप पाए जाते हैं । लोक नृत्यों की उर्वर भूमि ग्रामीण अंचल ही होता है, इनके आयोजन के लिए कोई रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति के मन में जब उमंग आती है तो वह विभिन्न शैलियों में अपनी लोक संस्कृति के अनुरूप नृत्य करने लगता है । लोक नृत्य से व्यक्ति को वास्तविक आनंद की प्राप्त होती है , लोक नृत्य में सम्मिलित व्यक्तियों के मस्तिष्क एवं हृदय भी खुले होते हैं जब लोकतंत्र का आयोजन होता है तो बिना किसी भेदभाव या संकुचित भावनाओं से लोग शामिल होते हैं। ऊंच नीच, जात-पात जैसी भावनाओं के लिए लोक नृत्य में कोई स्थान नहीं होता है। लोक नृत्य लोगों के हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह जागृत करता है।

सैला नृत्य - सैल या शैल का अर्थ है पर्वत। विंध्य एवं सतपुड़ा वन प्रांतों में निवास करने वाली गोंड आदिम जाति का यह वीर नृत्य है ।

पर्वतीय परिवेश में जीवन व्यतीत करते समय गोंड जनजाति को पहाड़ों में व्याप्त अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं से जूझना पड़ता है । वह इन समस्याओं का वीरता पूर्वक सामना करते हैं, वीरता के ऐसे ही गुणों की छाप सैला नृत्य में अंतर्निहित है। सैला नृत्य पर्वतीय नृत्य है, पर्वतीय होने के कारण इस नृत्य में पहाड़ जैसा साहस, बल, ऊर्जा एवं वीरता की स्पष्ट झलक मिलती है ,इसके पद संचलन, हाथों की विरोचित क्रियाएं तथा पैतरें पूर्ण रूप से वीरता के सूचक हैं। तभी तो सैला नर्तक गण हाथों में नृत्य के समय काठ के बने अस्त्र-शस्त्र जैसे लाठी, भाला , तलवार, बंदूक एवं लंबे-लंबे डंडे आदि लेकर युद्ध की विधाओं का प्रदर्शन करते हुए नित्य करते हैं ।यह केवल पुरुषों द्वारा ही किया जाता है अतः इससे भी इसके वीर नृत्य होने की पुष्टि होती है। ग्रामीण बोली में बैलगाड़ी की जुआडी में फंदे की गर्दन के अगल-बगल में जो डंडे बांधे जाते हैं उन्हें सैला कहते हैं ।सैला नृत्य का समय ठंड का मौसम अर्थात कार्तिक से फागुन

तक होता है जब धन को दो कुटकी आज की फसल काटकर घरों में आ जाती है तब गोंड जनजाति का गिरदा उत्सव प्रारंभ होता है गोंड संस्कृति का यह महत्वपूर्ण उत्सव है उल्लेखनीय है कि रीवा नरेश महाराज गुलाब सिंह ने गोंड़ो को 'सिंह' की उपाधि दी थी।

बघेली करमा- बघेलखंड में निवास करने वाली गोंड जनजाति के लोक नृत्य को "बघेली करमा" कहते हैं बघेलखंड में भी करमा नृत्य की पृष्ठभूमि वही है जो अन्य स्थानों में है। बघेली करमा के स्वरूप एवं रचना में अन्य करमा शैलियों की अपेक्षा भिन्नता है। यहां के करमा में नर्तकगण दो दलों में पहले आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। बघेली करमा दो प्रकार से नाचा जाता है एक करमा झूल और दूसरा करमा लहक। इस करमा में भी स्त्री -पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। नृत्य के साथ करमा गीत प्रमुख रूप से गाये जाते हैं, कभी-कभी सवाल-जवाब के गीत भी गाए जाते हैं।

रीना नृत्य-मध्य प्रदेश में विंध्याचल और सतपुड़ा पर्वत की पूर्वी भाग में निवास करने वाली गोंड आदिम जनजाति का प्रमुख नृत्य रीना नृत्य है, जिस प्रकार गोद जनजाति के पुरुषों में सैलानी नृत्य का प्रचलन है उसी प्रकार उनके स्त्री समाज में रीना नृत्य के परंपरा है , रीना नृत्य गोल घेरे अर्थ घेरे या पंक्ति में किया जाता है कभी-कभी महिलाएं दो दल बनाकर रीना नाचती है या गीत प्रधान होता है केवल पैरों व घुटनों का संचालन ही इस नृत्य की विशेषता है।

दशराहा नृत्य - यह बैगा आदिवासियों का सामाजिक नृत्य है, दशराहा की कोई विशेष पारंपरिक रचना नहीं होती है बैगा जनजाति में प्रचलित विभिन्न लोक नृत्यों को ही दशराहा नृत्य के नाम से जाना जाता है। दशराहा नृत्य वास्तव में एक वार्षिक उत्सव के रूप में आयोजित होता है। दशराहा नृत्य प्रमुख रूप से रस्मों का नृत्य है , इसमें नृत्य का महत्व कम है और रीति- रिवाजों और परंपराओं का महत्व अधिक है। दशराहा नृत्य बैगा युवाओं द्वारा नाचा जाता है, जिसका सिलसिला प्रतिवर्ष कुमार पंचमी से आरंभ होता है और कार्तिक अमावस्या तक जारी रहता है। बैगा जाति में मान्यता है कि वर्षा ऋतु के बाद दशराहा नृत्य वर्ष पर्यन्त तक नृत्य करने हेतु द्वार खोलता है ।

भीमा नृत्य- बघेलखंड के शहडोल जिले में "भीमा " जनजाति के द्वारा भीमा नृत्य किया जाता है। भीमा जनजाति का संपूर्ण जीवन लोक संगीत पर ही आधारित होता है भीमा नृत्य ही इनकी पैतृक संपत्ति है, इस नृत्य में परिवार के छोटे बड़े सभी सदस्य अपने मधुर मुस्कान के साथ सम्मिलित होते हैं। नृत्य के समय भीमा युवक तूमा बजाते हैं, जिसका नाम किंदरा रखा है । भीमा नृत्य किंदरा की लय ताल और गीतों की धुनों पर चलता है। गीत की आधी पंक्ति पुरुष गाता है, और आधी पंक्ति स्त्रियां गाकर नृत्य करती है ।नृत्य करते समय स्त्रियां पुरुषों से आगे रहती हैं तथा पुरुष उनके पीछे रहकर किंदरा बजाते हुए अपनी जगह पर नाचते हैं, चूंकि इनका नृत्य व्यवसायपरक होता है अतः लोगों को आकर्षित करने और उनका भरपूर मनोरंजन करने के लिए नृत्य के साथ गए जाने वाले लोकगीत अत्यंत श्रृंगारिक होते हैं।

कोलदहकी नृत्य - यह नृत्य कोल जनजाति का ही सामाजिक एवं जाति नृत्य है इसे "कोलहाई नाच "भी कहते हैं वैसे समाज या परिवार के सभी शुभ अवसरों पर कोलदहकी का आयोजन होता है किंतु बेटा या बेटी के विवाह के बाद गांव भर में जब समधी का प्रथम आगमन होता है तो उनके सत्कार में कोलदहकी नृत्य का आयोजन अत्यंत आवश्यक होता है। समधी के लिए आसन लगाया जाता है पुरुष वर्ग ढोलक, मंजीरा, झांझ, नगरिया लेकर बैठता है , सबसे पहले सभी वाधों की मिली- जुली झंकार बजाई जाती है, यही स्त्री वर्ग के लिए चुनौती पूर्ण आमंत्रण होता है। झंकार के बाद पुरुष वर्ग टेक भरता है जो काफी झूलावदार होता है । बहुत देर तक टेक भरी जाती है वाधों की एक जोरदार तोड़ के साथ एक टेक झटके से बंद होती है इसी तोड़ के साथ कोलनियों चुनौती स्वीकार करते हुए आ जाती है फिर शुरू होता

है कोलदहकी नृत्य और जीत का हंगामा मुकाबला । कोलदहकी नृत्य पंक्ति का नृत्य है, एक पंक्ति महिलाओं की और उन्हीं के समानांतर दूसरी पंक्ति पुरुषों की होती है।

दादर नृत्य- लोकनृत्य की परंपरा में "दादर नृत्य" भी बघेलखंड का एक बहुत प्रचलित लोक नृत्य है। इस नृत्य का प्रचलन यहां रहने वाली बारी,कोल, कोटवार, हरिजन और कहार जातियों में विशेष रूप से पाया जाता है, इन जातियों में दादर निकालने की प्रथा है, यह एक सांस्कृतिक रीति रिवाज है जो शादी विवाह के अवसर पर बारात आगमन के समय घराती एवं बाराती दोनों की ओर से मिलकर संपन्न होता है। गाजे- बाजे, धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ बड़े थाली या परात में प्रथानुसार निर्धारित सामग्री रखकर नाचते हुए दादर निकल जाती है। संबंधित जाति के नाम से ही दादर का नाम होता है जैसे बलिहारी दादर,चमरहाई दादर,केहराई दादर, कोलहाई दादर आदि। सामान्यतया दादर नृत्य में स्त्री- पुरुष दोनों सम्मिलित होते हैं किंतु अधिकतर महिलाएं लंबा घूंघट निकालकर हाथ पैर एवं कमर की लचीली सुंदर एवं आकर्षक मुद्रा में दादर नृत्य करती है महिलाएं जब नाचती है तो पुरुष सुहावने गीत गाते हैं जो श्रृंगारिक भी होते हैं। महिलाओं के पैरों में बड़ी घुंघरू, नृत्य का समा बांधती है ,इससे दूर-दूर से लोग चले जाते हैं ,बीच-बीच में पुरुष भी नृत्य करने लगते हैं । दादर की वेशभूषा वही वैवाहिक अवसरों के अनुसार रंग-बिरंगे वस्त्र होते हैं नगरिया ढोलक एवं शहनाई स्मृति के प्रमुख के लोक वाद्य हैं इस प्रकार लोक नृत्य सबके लिए एवं सब लोक नृत्य के लिए। इस सिद्धांत के अंतर्गत लोक नृत्य की परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है ।

निष्कर्ष- बघेलखंड में सुविधाविहीन लोक जन अपने संस्कारों, रीति रिवाजों ,परंपराओं एवं संस्कृति को लोकगीतों, लोक कथाओं एवं लोक नाटकों के माध्यम से सुरक्षित रखने का प्रयास किया। बघेलखंड में बघेली लोक भाषा पाई जाती है। यहां हिंदी लिखित रूप में उपयोग में लाई जाती है, लेकिन मौखिक रूप से बघेली बोली ही बोली जाती है। हिंदी की अपेक्षा लिखित रूप से बघेली साहित्य की उपलब्धता कम है। वही बघेलखंड का जनजातीय लोक जीवन गीत, कहानियों, और पहेलियों के रूप में प्रत्येक समाज में विद्यमान है। इसके अलावा लोक नृत्य, लोकनाट्य ,भूमि भित्त चित्र, अंग चित्र भी परंपरा के मुताबिक बनाए जाते हैं। बघेलखंड में लोक नृत्य समूह में नाचे जाते हैं , लोक नृत्य की गति और रचना सादी सरल और स्वाभाविक होती है, ताले सरल होती है जिन्हें सीखने में कठिनाई नहीं होती है, नाचते हुए समूह को देखकर लोगों के मन में अपने आप ही नाचने की इच्छा पैदा होती है। बघेली ग्रामीण अंचलों में लोक नृत्य अभी देखे जा सकते हैं जो की जनजातियों के मनोरंजन के प्रमुख साधन है। प्राय: सभी जनजाति समाज में उनकी अपनी लोक संस्कृति के अनुरूप लोक नृत्य हैं। बघेलखंड की प्राचीन कला और संस्कृति की झलक हमें यहां के लोकगीतों में परिलक्षित होती है। क्षेत्र में लगभग 88 प्रकार के लोकगीत विभिन्न संस्कारों के समय गाए जाते हैं। बघेली लोकगीत लोकोक्तियां में अभिव्यक्ति भावनाओं और अनुभूतियों में विविधता है इनका एक विस्तृत संसार है आज के भौतिक, वैज्ञानिक एवं मशीनी युग में मानव बनावटी जीवन के कारण लोक परंपराओं से दूर होता जा रहा है और अनेक तनाव का शिकार बनता जा रहा है।

" संदर्भ ग्रंथ सूची "

1. कुमारी प्रमिला, मध्य प्रदेश का भौगोलिक अध्ययन भोपाल मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
2. शुक्ल ,भगवती प्रसाद, बघेली भाषा और साहित्य इलाहाबाद
3. अखिलेश एस., रीवा दर्शन: बघेलखंड का सामाजिक- सांस्कृतिक इतिहास, रीवा
4. मिश्र, मुकुंद प्रसाद, रीवा जिले की पत्रकारिता का इतिहास रीवा
5. अली , रहमान, तवारीख -ए- बघेलखंड
6. शर्मा ,रामविलास, लोक जीवन और साहित्य, आगरा
7. शर्मा एवं उपाध्याय, भारत में जनजातीय संस्कृति, भोपाल
8. सिन्हा आर .के. पंडो जनजाति,भोपाल
9. त्रिपाठी आर्य प्रसाद बघेली साहित्य का इतिहास भोपाल
10. सिंह, जीतन, रीवा राज्य दर्पण